

(2011] 4 एस.सी.आर. 740

रेखा

बनाम

सरकार के सचिव के माध्यम से तमिलनाडु राज्य एवं एक अन्य

(2011 की दांडिक अपील संख्या 755)

05 अप्रैल, 2011

[मार्कडेय काटजू, सुरिंदर सिंह निज्जर एवं ज्ञान सुधा मिश्रा, न्यायामूर्तिगण]

तमिलनाडु में शराब तस्करो, मादक पदार्थों के अपराधियों, वन अपराधियों, गुंडों, अनैतिक व्यापार अपराधियों, रेत अपराधियों और झुग्गी-झोपड़ी पर कब्जा करने वालों और वीडियो पायरेसी की खतरनाक गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1982- अपीलकर्ता के पति पर आरोप था कि वह समाप्ति तिथि के बाद वाली के बाद की दवाओं के लेबल बदलकर उन्हें बेच रहा था। 1982 अधिनियम के तहत निरोध आदेश - निरोध आदेश को चुनौती देने वाली विनिर्दिष्ट आदेश याचिका उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई। - अपील पर, यह अभिनिर्धारित किया गया : निरोध के कारणों में केवल यह कहा गया था कि इसी तरह के वादों में न्यायालयों द्वारा जमानत दी गई थी और कोई विवरण नहीं दिया गया था। इसी तरह के वादों में कथित जमानत आदेश के बारे में जानकारी दी गई थी - निरोध आदेश में केवल स्वतः ही यह कहा गया था कि आरोपी के जमानत पर रिहा होने की कथित रूप से आसन्न संभावना है और इस संबंध में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं था। इसके अलावा, दंड संहिता और औषधि एवं सौंदर्य प्रसाधन अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान उक्त स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त थे। इसलिए, निरोध आदेश अवैध था और मान्य नहीं हो सकता, और इसे अभिखंडित किया जाता है।

निवारक निरोध कानून - इसके अंतर्गत आदेश - वैधता: जब दंड संहिता एवं अन्य दंड संहिता जैसे देश के सामान्य कानून ऐसी स्थिति से निपट सकते हैं - अभिनिर्धारित: ऐसे वाद में, निवारक निरोध कानून का सहारा लेना अवैध होगा।

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 22(3)(ख)- निवारक निरोध- शक्ति- अभिनिर्धारित : इसे बहुत ही सीमित दायरे में रखा जाना चाहिए, अन्यथा स्वतंत्रता का अधिकार निरर्थक हो जाएगा। अनुच्छेद 22(3)(ख) को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता, बल्कि इसे अनुच्छेद 19 एवं 21 के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

आरोप है कि अपीलकर्ता का पति दवाओं के लेबल में हेरफेर करके एवं उन पर नए लेबल छापकर उन्हें समाप्ति तिथि के बाद वाली से पहले की बताकर बेच रहा था। उसे तमिलनाडु में शराब तस्करी, मादक पदार्थों के अपराधियों, वन अपराधियों, गुंडों, अनैतिक व्यापार अपराधियों, रेत अपराधियों और झुग्गी-झोपड़ी पर कब्जा करने वालों और वीडियो पायरेसी की खतरनाक गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1982 के तहत जारी एक निरोध आदेश द्वारा निरोध में लिया गया था। अपीलकर्ता ने उक्त निरोध आदेश को चुनौती देते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने याचिका खारिज कर दी। इसलिए, अपीलकर्ता ने ये अपीलें दायर की हैं।

अपीलों को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1 भारत के संविधान का अनुच्छेद 22(3)(ख), जो निवारक निरोध की अनुमति देता है, संविधान के अनुच्छेद 21 का अपवाद मात्र है। अपवाद एक अपवाद ही होता है एवं सामान्यतः मुख्य नियम, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित स्वतंत्रता का अधिकार है, के पूर्ण प्रभाव को समाप्त नहीं कर सकता। मौलिक अधिकार जनता की नागरिक स्वतंत्रता की

रक्षा के लिए हैं, न कि उन्हें बिना अधिवक्ताओं की सहायता एवं बिना मुकदमे के लंबे समय तक जेल में रखने के लिए। इस प्रकार, अनुच्छेद 22 को पृथक रूप से नहीं पढ़ा जा सकता है, बल्कि इसे अनुच्छेद 21 के अपवाद के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। अपवाद केवल दुर्लभ एवं असाधारण वादों में ही लागू हो सकता है एवं यह मुख्य नियम को निरस्त नहीं कर सकता। अनुच्छेद 21 भारत के संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण है। अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता का अधिकार यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति को कारावास में डालने से पहले सामान्यतः एक विचारण चलाया जाना चाहिए जिसमें उसे सुनवाई का पूरा अवसर दिया जाए, एवं वह भी अधिवक्ता के माध्यम से, क्योंकि एक आम आदमी अधिवक्ताओं के बिना अपना बचाव ठीक से नहीं कर सकता। [कंडिका 13, 14, 15 एवं 16] [753 डी-ई; 753-जी; 754-ए-सी-डी]

*ए.एस. मोहम्मद रफी बनाम तमिलनाडु राज्य, ए.आई.आर. 2011 एससी 308; मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य, जे.टी. 2011 (2) एससी 527 -संदर्भित।*

*आर बनाम गृह विभाग के सचिव, एक्स पार्ले स्टैफोर्ड (1998) 1 डब्ल्यू.एल.आर. 503 (सीए) पॉवेल बनाम अलबामा 287 यू.एस. 45 (1932) -संदर्भित।*

1.2. संविधान के अनुच्छेद 22(1) के तहत निरोध में लिए गए व्यक्ति को अपनी पसंद के अधिवक्ताओं से परामर्श करने एवं बचाव प्राप्त करने का मौलिक अधिकार है। लेकिन अनुच्छेद 22(3) स्पष्ट रूप से निवारक निरोध के वादों में अनुच्छेद 22 के खंड (1) की प्रयोज्यता को बाहर करता है। इसलिए, निवारक निरोध की शक्ति को बहुत ही सीमित दायरे में रखना होगा, अन्यथा स्वतंत्रता का महान अधिकार निरर्थक हो जाएगा। अनुच्छेद 22(3)(ख) को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता, बल्कि इसे अनुच्छेद 19 एवं 21 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। [कंडिका 18 एवं 22] [754-एफ-जी]

*महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम भाऊराव पंजाबराव गवांडे (2008) 3 एससीसी 613; एम. नागराज एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2006) 8 एससीसी 212; एल.आर. कोएल्हो (मृत) बनाम तमिलनाडु राज्य (2007) 2 एससीसी 1 - संदर्भित।*

*ए.के. रॉय बनाम भारत संघ (1982) 1 एससीसी 271 अनुसरण किया गया।*

1.3. निवारक निरोध के वादों में कोई अपराध सिद्ध नहीं होता है एवं ऐसी निरोध का औचित्य संदेह या उचित संभावना पर आधारित होता है, एवं कोई दोषसिद्धि नहीं होती है जिसे केवल कानूनी साक्ष्य द्वारा ही प्रमाणित किया जा सकता है। निवारक निरोध को अक्सर 'संदेह का क्षेत्राधिकार' कहा जाता है। निरोध प्राधिकारी व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर निरोध का आदेश पारित करता है। चूंकि अनुच्छेद 22 का खंड (3) विशेष रूप से खंड (1) एवं (2) की प्रयोज्यता को बाहर करता है, इसलिए बंदी को अधिवक्ता रखने या गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत होने का अधिकार नहीं है। इस संभावित खतरनाक शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए निवारक निरोध कानून की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए एवं प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का सावधानीपूर्वक अनुपालन, चाहे वे कितने भी तकनीकी क्यों न हों, अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण है। [कंडिका 39 एवं 40] [760 डी-जी]

*महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम भाऊराव पंजाबराव गावंडे (2008) 3 एससीसी 613; कमलेशकुमार ईश्वरदास पटेल बनाम भारत संघ एवं अन्य (1995) 4 एससीसी 51; रतन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1981) 4 एससीसी 1981; अब्दुल लतीफ अब्दुल वहाब शेख बनाम बी.के. झा एवं अन्य (1987) 2 एससीसी 22 संदर्भित।*

*संयुक्त फासीवाद विरोधी शरणार्थी समिति बनाम मैकग्राथ 341 यूएस 123 संदर्भित।*

1.4. प्रक्रियात्मक अधिकार बंदी के प्रति भावनात्मक चिंताओं पर आधारित नहीं हैं। प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय अपराधियों को संरक्षण देने या ऐसे तकनीकी खामियों का लाभ उठाने

के लिए नहीं बनाए गए हैं जिनके माध्यम से खतरनाक व्यक्ति अपने कृत्यों के परिणामों से बच सकें। ये मूल रूप से समाज को आश्वासन हैं कि अधिकारी सदियों के ठोस अनुभवों से प्राप्त नियमों के अनुसार उचित व्यवहार करेंगे। अनुच्छेद 21 के तहत संरक्षित व्यक्तिगत स्वतंत्रता इतनी पवित्र एवं संवैधानिक मूल्यों के पैमाने पर इतनी उच्च है कि बंदी प्राधिकारी का यह दायित्व है कि वह यह प्रदर्शित करे कि आक्षेपित निरोध कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुरूप है। [कंडिका 45 एवं 46] [761-एच; 762-ए-सी]

*थॉमस पचम डेल* का वाद (1881) 6 क्यूबीडी 376 संदर्भित।

2.1, यदि किसी व्यक्ति ने जमानत याचिका दायर की है एवं वह लंबित है, तो उसे जमानत पर रिहा किए जाने की वास्तविक संभावना है। तार्किक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई जमानत याचिका लंबित नहीं है, तो निरोध में लिए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा किए जाने की कोई संभावना नहीं है, एवं इस प्रकार, निरोध आदेश अवैध होगा। हालांकि, इस नियम का एक अपवाद हो सकता है, अर्थात्, जहां एक सह-आरोपी, जिसका वाद समान आधार पर है, को जमानत दी गई हो। ऐसे वादों में, निरोध प्राधिकारी यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि निरोध में लिए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा किए जाने की संभावना है, भले ही उसकी कोई जमानत याचिका लंबित न हो, क्योंकि अधिकांश न्यायालय सामान्यतः इसी आधार पर जमानत देते हैं। हालांकि, ऐसे कथित समान वादों का विवरण दिया जाना चाहिए, अन्यथा प्राधिकारी के निराधार कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। [कंडिका 29] सी [757-जी-एच; 758-ए-बी]

2.2. वर्तमान वाद में, निरोध के कारणों का अवलोकन करने से पता चलता है कि उन कथित समान वादों के बारे में कोई विवरण नहीं दिया गया है जिनमें संबंधित न्यायालय द्वारा कथित रूप से जमानत दी गई थी। न तो कथित जमानत आदेशों की तिथि का उल्लेख किया

गया है, न ही जमानत आवेदन संख्या का, न ही यह बताया गया है कि क्या जमानत आदेश सह-आरोपी के संबंध में उसी वाद में पारित किए गए थे, एवं न ही यह कि क्या जमानत आदेश अन्य सह-आरोपियों के संबंध में उन वादों में पारित किए गए थे जो आरोपी के वाद के समान थे। निरोध के कारणों में केवल इतना ही कहा गया है कि 'समान वादों में न्यायालयों द्वारा जमानत दी गई थी।' यदि उत्तरदाता प्राधिकारी द्वारा समान वादों में कथित जमानत आदेशों के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाती है, जिसमें आदेश की तिथि, जमानत आवेदन संख्या, क्या जमानत आदेश उसी वाद में सह-आरोपी के संबंध में पारित किया गया था, एवं क्या सह-आरोपी का वाद याचिकाकर्ता के वाद के समान था, तो निश्चित रूप से यह तर्क दिया जा सकता है कि आरोपी को जमानत पर रिहा किए जाने की संभावना है, क्योंकि अधिकांश न्यायालयों की यह सामान्य प्रथा है कि यदि किसी सह-आरोपी को जमानत दी गई है एवं उसका वाद याचिकाकर्ता के वाद के समान है, तो याचिकाकर्ता को आमतौर पर जमानत दे दी जाती है। हालांकि, उत्तरदाता प्राधिकारी को इसी तरह के वादों में कथित जमानत आदेश के बारे में विस्तृत जानकारी देनी चाहिए थी, जो इस वाद में नहीं दी गई। निरोध आदेश में केवल आरोपी के जमानत पर रिहा होने की कथित संभावना के बारे में स्वतः कथन है एवं इस संबंध में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। इसलिए, निरोध आदेश को मान्य नहीं ठहराया जा सकता। [कंडिका 6, 7, 10 एवं 11] [751-सी-ई; 752-डी-एच]

*टी.वी. श्रावणन उर्फ एस.ए.आर. प्रसन्ना वेंकटचारियार चतुर्वेदी बनाम राज्य सचिव एवं अन्य (2006) 2 एससीसी 664; ए. शांति (श्रीमती) बनाम तमिलनाडु सरकार एवं अन्य (2006) 9 धारा 711; राजेश गुलाटी बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार एवं अन्य (2002) 7 एससीसी 129; हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1975) 3 एससीसी 198;*

ए. गीता बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य (2006) 7 एससीसी 603; इब्राहिम नजीर बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य (2006) 6 धारा 64 - संदर्भित।

2.3. अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि क्या निरोध आदेश पारित होने की तिथि पर निरोध प्राधिकारी को इस तथ्य की जानकारी थी कि अभियुक्त की जमानत याचिका लंबित थी। दूसरी ओर, निरोध के कारणों में यह उल्लेख किया गया है कि 'टीआर' अपराध संख्या 13212010 में रिमांड पर है एवं उसने अभी तक कोई जमानत याचिका दायर नहीं की है। इस प्रकार, निरोध आदेश पारित करते समय निरोध प्राधिकारी को इस बात की जानकारी भी नहीं थी कि अभियुक्त की जमानत याचिका लंबित थी या नहीं, बल्कि निरोध प्राधिकारी ने इस धारणा के तहत निरोध आदेश पारित किया कि अभियुक्त की कोई जमानत याचिका लंबित नहीं थी, जबकि इसी तरह के वादों में न्यायालयों द्वारा जमानत दी जा चुकी थी। कथित समान वादों का कोई विवरण नहीं दिया गया है। इसलिए, निरोध आदेश को मान्य नहीं ठहराया जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि वाद का अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया गया है एवं गंभीर अपराधों के वादों में पारित निवारक निरोध आदेशों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। [कंडिका 27 एवं 30] [757-सी-ई; 758-सी]

भारत संघ बनाम पॉल मणिकम एवं अन्य (2003) 8 एससीसी 342 - संदर्भित।

2.4. यदि देश का सामान्य कानून (दंड संहिता एवं अन्य दंड संहिता) किसी स्थिति से निपटने में सक्षम है, तो निवारक निरोध कानून का सहारा लेना अवैध होगा। जब भी निवारक निरोध कानून के तहत किसी आदेश को चुनौती दी जाती है, न्यायालय को उसकी वैधता का निर्णय करते समय यह प्रश्न अवश्य पूछना चाहिए: क्या देश का सामान्य कानून उस स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त था? यदि उत्तर सकारात्मक है, तो निरोध आदेश अवैध होगा। इस वाद में, बंदी पर लेबल बदलकर समाप्ति तिथि के बाद वाली के बाद वाली दवाओं को बेचने का आरोप

था। निश्चित रूप से दंड संहिता एवं औषधि एवं सौंदर्य प्रसाधन अधिनियम के संबंधित प्रावधान इस स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त थे। इस प्रकार, निरोध आदेश अवैध था। [कंडिका 31 एवं 32] (758-डी-जी; 759-ए)

*बीराम चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य* (1974) 4 एससीसी 573 - संदर्भित।

2.5. हरधन साहा के वाद में की गई टिप्पणी को इस बात का पूर्णतः वर्णन नहीं माना जा सकता कि प्रत्येक वाद में, जहाँ कोई व्यक्ति किसी दांडिक न्यायालय में किसी अपराध के लिए विचारण चलाने योग्य है, या वास्तव में विचारण चला रहा है, तो निवारक निरोध कानून के तहत भी निरोध आदेश पारित किया जा सकता है। (कंडिका 38) [760-सी]

*हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य* (1975) 3 एससीसी 198 - संदर्भित।

2.6. आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है एवं आक्षेपित निरोध आदेश को अभिखंडित किया जाता है। हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इससे कथित आरोपी के विरुद्ध लंबित दांडिक वादों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। [कंडिका 47] [762-ई]

#### नज़ीर सन्दर्भ

(2006) 2 एससीसी 664	संदर्भित	कंडिका 8
(2006) 9 एससीसी 711	संदर्भित	कंडिका 8
(2002) 7 एससीसी 129	संदर्भित	कंडिका 8
(1975) 3 एससीसी 198	संदर्भित	कंडिका 9
(2006) 7 एससीसी 603	संदर्भित	कंडिका 9
(2006) 6 एससीसी 64	संदर्भित	कंडिका 9
(1998) 1 डब्ल्यूएलआर 503 (सीए)	संदर्भित	कंडिका 13
एआइआर 2011 एससी 308	संदर्भित	कंडिका 17
जेटी 2011 (2) एससी 527	संदर्भित	कंडिका 17

287 यूएस 45 (1932)	संदर्भित	कंडिका 17
(2008) 3 एससीसी 613	संदर्भित	कंडिका 19
(2006) 8 एससीसी 212	संदर्भित	कंडिका 20
(2007) 2 एससीसी 1	संदर्भित	कंडिका 21
(1982) 1 एससीसी 27	अनुसरित	कंडिका 22
(2003) 8 एससीसी 342	संदर्भित	कंडिका 28
(1974) 4 एससीसी 573	संदर्भित	कंडिका 33
(1995) 4 एससीसी 51	संदर्भित	कंडिका 41
(1981) 4 एससीसी 1981	संदर्भित	कंडिका 42
(1987) 2 एससीसी 22	संदर्भित	कंडिका 43
341 यूएस 123	संदर्भित	कंडिका 44

दांडिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2011 का दांडिक अपील संख्या 755

2010 की उच्च न्यायालय अपील संख्या 792 में मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 23.12.2010 के निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न:

के साथ

2011 का दांडिक अपील संख्या 756, 757, 759, 760, 762, 763 एवं 764।

अपीलकर्ता के लिए के.के. मणि, अभिषेक कृष्णा, एस.जे. एरिस्टोटल, ए. रोहन सिंह, बॉब, प्रिया एरिस्टोटल, प्रभु रामसुब्रमण्यम, वी.जी. प्रगासम, वी. मोहना, वी. परशांत, जी. आनंद सेल्वम, जैमन एंड्रयूज, ए. संथा कुमारन, रवींद्र केशवराव एडसुरे, गुरु कृष्ण कुमार, अभय कुमार, अक्षत हंसारिया, ममता चंदेल।

उत्तरदाताओं के लिए अल्ताफ अहमद, प्रोमिला, एस. धनंजयन

न्यायालय का निर्णय

मार्कडेय काटजू, न्यायमूर्ति, द्वारा सुनाया गया।

2011 का दांडिक अपील संख्या. 755

1. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना।
2. यह अपील इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिनांक 15.03.2011 के आदेश द्वारा संदर्भित वाद में आई है।
3. इस अपील में बंदी रामकृष्णन (जिनकी पत्नी रेखा ने यह अपील दायर की है) को दिनांक 08.04.2010 के एक निरोध आदेश द्वारा तमिलनाडु अवैध शराब विक्रेताओं, मादक पदार्थों के अपराधियों, वन अपराधियों, गुंडों, अनैतिक व्यापार अपराधियों, रेत अपराधियों एवं झुग्गी-झोपड़ी पर कब्जा करने वालों एवं वीडियो पायरेसी की रोकथाम अधिनियम, 1982 के तहत इस आरोप पर निरूध्द किया गया है कि वह लेबल में हेरफेर करके एवं उन पर नए लेबल छापकर, उन्हें गैर-निष्पादित दवाएँ दिखाकर, समाप्त हो चुकी दवाओं को बेच रहा था। निरोध में लिए गए व्यक्ति की पत्नी द्वारा उक्त निरोध आदेश को चुनौती देते हुए मद्रास उच्च न्यायालय में दायर की गई बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को दिनांक 23.12.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। अतः, यह अपील दायर की गई है।
4. हमारे समक्ष अनेक वाद बिंदु उठाए गए हैं, परन्तु हमारी राय में यह अपील मात्र एक आधार पर ही सफल होने योग्य है, अतः हम अन्य बिंदुओं पर विचार नहीं कर रहे हैं।

निरोध आदेश इस प्रकार है:

"संख्या 199/2010

दिनांक 08.04.2010"

निरोध आदेश

चूंकि मैं, टी. राजेंद्रन, आईपीएस, पुलिस आयुक्त, चेन्नई पुलिस, इस बात से संतुष्ट हूँ कि टी. रामकृष्णन, पुरुष, आयु 35 वर्ष, पिता देवराज, पता: 82-बी, साउथ मदा वीथी, विल्लीवाक्कम, चेन्नई-49, तमिलनाडु अधिनियम 14, 1982 की धारा 2(ई) के तहत मादक पदार्थों का अपराधी है, एवं उसे सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए हानिकारक किसी भी प्रकार के कार्य करने से रोकने के लिए, निम्नलिखित आदेश देना आवश्यक है।

अतः, तमिलनाडु अधिनियम, 1982 (तमिलनाडु अधिनियम 14 1982) की धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा मुझे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, एवं सरकार द्वारा गृह, निषेध एवं उत्पाद शुल्क (XVI) विभाग के दिनांक 18 जनवरी, 2010 के आदेश संख्या 6 के तहत धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मैं निर्देश देता/देती हूँ कि उक्त मादक पदार्थ अपराधी टीआर. रामकृष्णन, पिता देवराज, को केंद्रीय कारागार, पुझल, चेन्नई में निरोध में रखा जाए।

मेरे हस्ताक्षर एवं इस कार्यालय की मुहर के तहत दिनांक 8 अप्रैल, 2010 को दिया गया।

5. उक्त निरोध आदेश जारी करने के आधारों का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"त्रि. एलांगो, एम.फार्मा, पुरुष, आयु 43 वर्ष, पिता रामासामी औषधि निरीक्षक, औषधि नियंत्रण विभाग, पेरम्बूर रेंज, जोन-II, डी.एम.एस. कॉम्प्लेक्स, तेयनमपेट, चेन्नई-18 में कार्यरत हैं। 15.03.2010 को, त्रि. एलांगो पुलिस निरीक्षक, अपराध पी-6 कोडुंगईयूर पुलिस थाना के समक्ष उपस्थित हुए एवं निम्नलिखित के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराई: 1) थिरुवलारगल, प्रभाकर उर्फ रवि, 2) वेंकटेशन, 3) संजय कुमार, 4) शेखर, 5) भास्कर, 6) प्रदीप कुमार चोरडिया एवं 7) मीनाक्षी सुंदरम।

अपनी शिकायत में उन्होंने कहा है कि चेन्नई शहर एवं उपनगरों की दवा दुकानों से एकत्रित की गई समाप्ति तिथि के बाद वाली के बाद वाली दवाइयों को एञ्जिल नगर,

कोडुंगईयूर, चेन्नई स्थित कॉर्पोरेशन ग्राउंड के डंप यार्ड में फेंका जाता था। 15.3.2010 को, थिरु. एलंगो को गुप्त सूचना मिली कि कॉर्पोरेशन ग्राउंड, एडिल नगर, कोडुंगईयूर, चेन्नई स्थित डंप यार्ड में फेंकी गई समाप्ति तिथि के बाद वाली दवाइयों को थिरु. प्रभाकर उर्फ रवि ने ले लिया था, जो सं. ए-6/541, 151वीं स्ट्रीट, मुथमिज़ नगर, कोडुंगईयूर, चेन्नई के पहले तल पर रहते हैं। उन्होंने अपने साथियों के साथ मिलकर दवाइयों के मूल लेबलों में छेड़छाड़ की एवं नए लेबल छापकर उन्हें नई दवाइयों की तरह दिखाने की कोशिश की एवं फिर उन्हें आम जनता को बेच दिया।

निरोध के आधारों के कंडिका 4 में कहा गया है:

"4. मुझे ज्ञात है कि तिरु रामकृष्णन, पी.6, कोडुंगईयूर पुलिस थाना, अपराध संख्या 132/2010 में निरोध में हैं एवं उन्होंने अभी तक कोई जमानत याचिका दायर नहीं की है। प्रायोजक प्राधिकारी ने कहा है कि तिरु रामकृष्णन के रिश्तेदार उपरोक्त वाद में उन्हें जमानत पर छुड़ाने के लिए उच्च न्यायालयों में जमानत याचिका दायर कर रहे हैं, क्योंकि इसी तरह के वादों में न्यायालयों द्वारा कुछ समय बाद जमानत दी गई थी। इसलिए, उच्च न्यायालयों में जमानत याचिका दायर करके उपरोक्त वाद में उनके जमानत पर रिहा होने की वास्तविक संभावना है। यदि वे जमानत पर रिहा होते हैं, तो वे आगे ऐसी गतिविधियों में लिप्त होंगे जो सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं व्यवस्था के रखरखाव के लिए हानिकारक होंगी। इसके अलावा, सामान्य दांडिक कानून का सहारा लेने से उन्हें ऐसी गतिविधियों में लिप्त होने से प्रभावी ढंग से रोकने का वांछित प्रभाव नहीं होगा, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं व्यवस्था के रखरखाव के लिए हानिकारक हैं। मेरे समक्ष प्रस्तुत आलेख के आधार पर, मैं पूरी तरह से संतुष्ट हूँ कि उक्त तिरु रामकृष्णन मादक पदार्थों के अपराधी भी हैं एवं उन्हें निरोध में लेना अत्यंत आवश्यक है ताकि भविष्य में वे ऐसी गतिविधियों में लिप्त न हों

जो 1982 के तमिलनाडु अधिनियम 14, के प्रावधानों के तहत सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए हानिकारक हों।

6. निरोध के आधारों के कंडिका 4 में दिए गए उपरोक्त कथन के अवलोकन से पता चलता है कि उन कथित समान वादों के बारे में कोई विवरण नहीं दिया गया है जिनमें संबंधित न्यायालय द्वारा कथित रूप से जमानत दी गई थी। न तो कथित जमानत आदेशों की तिथि का उल्लेख किया गया है, न ही जमानत आवेदन संख्या का, न ही यह बताया गया है कि क्या जमानत आदेश सह-आरोपी के संबंध में उसी वाद में पारित किए गए थे, एवं न ही यह कि क्या जमानत आदेश अन्य सह-आरोपियों के संबंध में आरोपी के वाद के समान वादों में पारित किए गए थे। निरोध के आधारों में केवल इतना ही कहा गया है कि "समान वादों में न्यायालयों द्वारा जमानत दी गई थी"। हमारी राय में, विवरणों के अभाव में यह कथन मात्र निराधार है एवं इस पर अवलंबन नहीं किया जा सकता है।

7. हमारी राय में, यह स्वयं ही निरोध आदेश को अमान्य करने के लिए पर्याप्त है।

8. टी.वी. श्रावणन उर्फ एस.ए.आर. प्रसन्ना वेंकटचारियार चतुर्वेदी बनाम राज्य सचिव एवं एक अन्य (2006) 2 एससीसी 664; ए. शांति (श्रीमती) बनाम तमिलनाडु सरकार एवं अन्य, (2006) 9 एससीसी 711; राजेश गुलाटी बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार एवं एक अन्य (2002) 7 एससीसी 129, आदि वादों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि कोई जमानत याचिका लंबित नहीं है एवं बंदी वास्तव में पहले से ही किसी दांडिक वाद में जेल में है, तो निवारक निरोध कानून के तहत निरोध आदेश अवैध है। ये निर्णय संविधान पीठ के हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1975) 3 एससीसी 198 के फैसले का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं, जिसमें यह देखा गया है (कंडिका 34 देखें):

“यदि संबंधित व्यक्ति वास्तव में उस समय जेल में है जब उसके विरुद्ध निरोध का आदेश पारित किया जाता है एवं उसके उचित समय तक रिहा होने की संभावना नहीं है, तो यह तर्क दिया जा सकता है कि निरोध प्राधिकारी को इस बात का कोई संतोष नहीं हो सकता कि ऐसा व्यक्ति राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था को खतरे में डालने वाली गतिविधियों में शामिल होगा।”

9. दूसरी ओर, तमिलनाडु राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अल्ताफ अहमद ने इस न्यायालय के *ए. गीता बनाम तमिलनाडु राज्य एवं एक अन्य* (2006) 7 एससीसी 603; एवं *इब्राहिम नज़ीर बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य*, (2006) 6 एस.सी.सी. 64, के निर्णयों पर अवलंबन किया है। जिसमें यह माना गया है कि भले ही याचिकाकर्ता की कोई जमानत याचिका लंबित न हो, लेकिन यदि इसी तरह के वादों में जमानत दी गई है, तो यह निरोध आदेश पारित करने के लिए निरोध प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए एक अच्छा आधार है।

10. हमारी राय में, यदि उत्तरदाता प्राधिकारी द्वारा समान वादों में कथित जमानत आदेशों के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाती, जिसमें आदेश की तिथि, जमानत आवेदन संख्या, क्या जमानत आदेश उसी वाद में सह-आरोपी के संबंध में पारित किया गया था, एवं क्या सह-आरोपी का वाद याचिकाकर्ता के वाद के समान था, का उल्लेख किया जाता, तो निश्चित रूप से यह तर्क दिया जा सकता था कि आरोपी को जमानत पर रिहा किए जाने की संभावना है, क्योंकि अधिकांश न्यायालयों की यह सामान्य प्रथा है कि यदि किसी सह-आरोपी को जमानत दी गई है एवं उसका वाद याचिकाकर्ता के वाद के समान है, तो याचिकाकर्ता को आमतौर पर जमानत दी जाती है। हालांकि, उत्तरदाता प्राधिकारी को समान वादों में कथित जमानत आदेश के बारे में विस्तृत जानकारी देनी चाहिए थी, जो वर्तमान वाद में नहीं दी गई है। निरोध के आधारों में मात्र

स्वतःस्फूर्त कथन निरोध आदेश को मान्य नहीं कर सकता एवं इसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए।

11. हमारी राय में, विचाराधीन निरोध आदेश में केवल आरोपी के जमानत पर रिहा होने की कथित संभावना के संबंध में स्वतः ही बयानबाजी की गई है एवं इस संबंध में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। इसलिए, विचाराधीन निरोध आदेश को मान्य नहीं ठहराया जा सकता।

12. इसके अलावा, यदि याचिकाकर्ता की उसी वाद से संबंधित जमानत याचिका किसी दांडिक वाद में भी लंबित हो, तो भी निरोध आदेश को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, जैसे कि विचाराधीन कार्य कानून एवं व्यवस्था से संबंधित है न कि लोक व्यवस्था से; निरोध आदेश पारित करने के लिए कोई प्रासंगिक सामग्री नहीं थी; दुर्भावना थी; आदेश किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था; शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्व शर्त मौजूद नहीं थी; व्यक्तिपरक संतुष्टि तर्कहीन थी; बुद्धि का प्रयोग नहीं किया गया था; आधार अस्पष्ट, अनिश्चित, अप्रासंगिक, बाहरी, अस्तित्वहीन या पुराने हैं; निरोध आदेश पारित करने में देरी हुई थी या उसे लागू करने में देरी हुई थी या बंदी के निवेदन पर निर्णय लेने में देरी हुई थी; आदेश सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं था; वाद को सलाहकार समिति को संदर्भित करने में विफलता हुई थी या संदर्भ विलंबित था, आदि।

13. हमारी राय में, भारत के संविधान का अनुच्छेद 22(3)(ख), जो निवारक निरोध की अनुमति देता है, संविधान के अनुच्छेद 21 का केवल एक अपवाद है। अपवाद तो अपवाद ही होता है एवं सामान्यतः मुख्य नियम, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित स्वतंत्रता का अधिकार है, के पूर्ण प्रभाव को समाप्त नहीं कर सकता। मौलिक अधिकार जनता की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हैं, न कि उन्हें बिना अधिवक्ता की सहायता एवं बिना मुकदमे के लंबे

समय तक जेल में रखने के लिए। जैसा कि *आर बनाम गृह विभाग के सचिव, एकतरफा स्टैफोर्ड*, (1998) 1 डब्ल्यूएलआर 503 (सीए) में कहा गया है:

"कार्यकारी विवेकाधिकार के प्रयोग द्वारा, बिना मुकदमे के, वास्तव में एक लंबी अवधि के कारावास की सजा देना, कानून के शासन की सामान्य अवधारणाओं के साथ मेल नहीं खाता।"

14. अतः अनुच्छेद 22 को पृथक रूप से नहीं पढ़ा जा सकता, बल्कि इसे अनुच्छेद 21 के अपवाद के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। अपवाद केवल दुर्लभ एवं असाधारण वादों में ही लागू हो सकता है, एवं यह मुख्य नियम को निरस्त नहीं कर सकता।

15. अनुच्छेद 21 भारत के संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण है। नागरिक की स्वतंत्रता हमारे पूर्वजों द्वारा लंबे, ऐतिहासिक एवं कठिन संघर्षों के बाद प्राप्त किया गया एक अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकार है। हमारे संस्थापक पिताओं ने इसके महत्व को समझा क्योंकि उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपने देशवासियों की नागरिक स्वतंत्रता को विदेशियों द्वारा कुचले जाते देखा था, एवं इसीलिए वे दृढ़ थे कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को जीवन के अधिकार के साथ-साथ भारत के लोगों के मूलभूत अधिकार के रूप में सर्वोच्च स्थान दिया जाएगा।

16. अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता का अधिकार यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति को कारावास में डालने से पहले सामान्यतः एक विचारण चलाया जाना चाहिए जिसमें उसे सुनवाई का पूरा अवसर दिया जाए, एवं वह भी एक अधिवक्ता के माध्यम से, क्योंकि एक आम आदमी अधिवक्ता के बिना अपना बचाव ठीक से नहीं कर सकता।

17. किसी व्यक्ति को अपना बचाव ठीक से करने में सक्षम बनाने के लिए अधिवक्ता के महत्व को इस न्यायालय ने *ए. एस. मोहम्मद रफी बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 2011*

एससी 308, एवं मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य, जेटी 2011 (2) एससी 527 वाद में विस्तार से समझाया है। जैसा कि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति सदरलैंड ने पावेल बनाम अलबामा, 287 यू.एस. 45 (1932) में टिप्पणी की थी। "यद्यपि बुद्धिमान एवं शिक्षित आम आदमी को भी विधि विज्ञान का ज्ञान कम होता है, एवं कभी-कभी तो बिलकुल भी नहीं होता", इसलिए, बिना अधिवक्ता के, वह निर्दोष होते हुए भी दोषी ठहराया जा सकता है।

18. संविधान का अनुच्छेद 22(1) किसी भी बंदी व्यक्ति को अपनी पसंद के अधिवक्ता से परामर्श करने एवं उसके द्वारा बचाव किए जाने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। परन्तु अनुच्छेद 22(3) स्पष्ट रूप से निवारक निरोध के वादों में अनुच्छेद 22 के खंड (1) की प्रयोज्यता को वर्जित करता है। अतः, हमें निवारक निरोध की शक्ति को बहुत सीमित रखना चाहिए, अन्यथा हमारे संस्थापक जनकों, जो स्वयं भी स्वतंत्रता सेनानी थे, द्वारा लंबे, कठिन, ऐतिहासिक संघर्षों के बाद प्राप्त स्वतंत्रता का महान अधिकार निरर्थक हो जाएगा।

19. महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम भाऊराव पंजाबराव गावंडे, (2008) 3 एससीसी 613 (कंडिका 23) में इस न्यायालय ने टिप्पणी की:

"...व्यक्तिगत स्वतंत्रता एक अनमोल अधिकार है। संविधान निर्माताओं का भी यही मानना था, क्योंकि जहाँ उनका पहला उद्देश्य जनता को एक संविधान देना था जिसके द्वारा सरकार की स्थापना की जा सके, वहीं उनका दूसरा, समान रूप से महत्वपूर्ण उद्देश्य, जनता को सरकार से बचाना था। यही कारण है कि सरकार को व्यापक शक्तियाँ प्रदान करते हुए, जैसे कि आपातकाल घोषित करने की शक्ति, मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को निलंबित करने की शक्ति या अध्यादेश जारी करने की शक्ति, उन्होंने संविधान के भाग III द्वारा जनता को अधिकारों का विधेयक सुनिश्चित किया, जो कार्यपालिका एवं विधायिका के निरंकुशता से उन

मानवाधिकारों की रक्षा करता है जिन्हें वे मौलिक मानते थे। इन अधिकारों की रक्षा की अनिवार्यता इतिहास एवं मानव अनुभव से मिलने वाला एक सबक है। हमारे संविधान निर्माताओं ने कठिन परिस्थितियों का सामना किया था एवं एक विदेशी सरकार को उन मानवाधिकारों को कुचलते हुए देखा था जिनके संरक्षण के लिए देश ने कड़ा संघर्ष किया था। वे जेफरसन की तरह मानते थे कि "चुनावी निरंकुशता के लिए हमने संघर्ष किया था"। एवं, इसलिए, सरकार को भीतर से अराजकता एवं बाहर से विजय को रोकने के लिए व्यापक शक्तियाँ प्रदान करते हुए, उन्होंने यह सुनिश्चित करने का ध्यान रखा कि उन शक्तियों का दुरुपयोग जनता की स्वतंत्रता को भंग करने के लिए नहीं किया गया। (देखें *ए.के. रॉय बनाम भारत संघ* (1982) 1 एससीसी 271, एवं *भारत के अटॉर्नी जनरल बनाम अमृतलाल प्रजीवदास*, (1994) 5 एससीसी 54)। [जोर दिया गया]

20. *एम. नागराज एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य* (2006) 8 एससीसी 212 (कंडिका 20) में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की:

"मौलिक अधिकारों को राज्य द्वारा अपने नागरिकों को दिए गए उपहार के रूप में मानना एक भ्रान्ति है। व्यक्ति किसी भी संविधान से स्वतंत्र रूप से मूलभूत मानवाधिकारों के स्वामी होते हैं, क्योंकि वे मानव जाति के सदस्य हैं।"

21. इस न्यायालय की 9 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने *आइ.आर. कोएल्हो (मृत) बनाम तमिलनाडु राज्य* (2007) 2 एससीसी 1 (कंडिका 109 एवं 49 देखें) के वाद में निर्णय देते हुए कहा:

"यह हमेशा ध्यान में रखना आवश्यक है कि मौलिक अधिकारों को संविधान का हृदय एवं आत्मा माना गया है... मौलिक अधिकार सभ्य समाजों के जीवन में

एक अद्वितीय स्थान रखते हैं एवं निर्णयों में इन्हें "अति उत्कृष्ट", "अविभाज्य" एवं मौलिक बताया गया है।"

22. हमारी राय में, अनुच्छेद 22(3)(ख) को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता, बल्कि इसे अनुच्छेद 19 एवं 21 के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि इस न्यायालय की संविधान पीठ ने ए.के. रॉय बनाम भारत संघ (1982) 1 एससीसी 271 (कंडिका 70) के वाद में निर्णय दिया है।"

23. यह कहना तो ठीक है कि निवारक निरोध दंडात्मक नहीं बल्कि निवारक है। लेकिन सच्चाई यह है कि एक वर्ष (या किसी अन्य अवधि) का निरोध आदेश सार रूप में एक वर्ष के कारावास के बराबर ही होता है। बंदी को इससे क्या फर्क पड़ता है कि उसके कारावास को निवारक कहा जाए या दंडात्मक?

24. उत्तरदाताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अल्ताफ अहमद ने तर्क दिया कि बंदी के खिलाफ मूल लेबल हटाकर एवं नए लेबल छापकर दवाओं को बेचने के गंभीर आरोप हैं, ताकि वे ऐसी लगें जैसे कि उनका समय समाप्त नहीं हुआ है।

25. इस संबंध में, भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के साथ-साथ औषधि एवं सौंदर्य प्रसाधन अधिनियम, 1940 के तहत बंदी के विरुद्ध दंडात्मक वाद पहले से ही चल रहे हैं एवं यदि वह दोषी पाया जाता है, तो उसे सजा सुनाई जाएगी एवं उचित दंड दिया जाएगा। हमारी राय में, इस स्थिति से निपटने के लिए देश का सामान्य कानून पर्याप्त था, एवं इसलिए, निवारक निरोध कानून का सहारा लेना अवैध था।

26. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अल्ताफ अहमद ने आगे कहा कि आक्षेपित निरोध आदेश 08.04.2010 को पारित किया गया था एवं बंदी की जमानत याचिका भी उसी दिन खारिज कर दी गई थी। इसलिए, उन्होंने कहा कि यह नहीं कहा जा सकता कि प्रश्नगत निरोध आदेश पारित होने के समय कोई जमानत याचिका लंबित नहीं थी।

27. इस संबंध में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि निरोध प्राधिकारी को इस तथ्य की जानकारी थी कि 08.04.2010 को निरोध आदेश पारित होने के समय आरोपी की जमानत याचिका लंबित थी। दूसरी ओर, निरोध के कारणों के कंडिका 4 में उल्लेख किया गया है कि "तिरू रामकृष्णन अपराध संख्या 13/2010 में रिमांड पर हैं एवं उन्होंने अभी तक कोई जमानत याचिका दायर नहीं की है"। इस प्रकार, निरोध आदेश पारित करते समय, निरोध प्राधिकारी को इस बात की जानकारी भी नहीं थी कि अभियुक्त की जमानत याचिका लंबित है या नहीं। बल्कि, निरोध प्राधिकारी ने इस धारणा के तहत निरोध आदेश पारित किया कि अभियुक्त की कोई जमानत याचिका लंबित नहीं है, जबकि इसी तरह के वादों में न्यायालयों द्वारा जमानत दी जा चुकी है। हमने ऊपर पहले ही कहा है कि कथित समान वादों का कोई विवरण नहीं दिया गया है। इसलिए, विचाराधीन निरोध आदेश मान्य नहीं है।

28. *भारत संघ बनाम पॉल मणिकम एवं एक अन्य* (2003) 8 एससीसी 342 में यह माना गया कि यदि निरोध में लेने वाला प्राधिकारी इस तथ्य से अवगत है कि बंदी निरोध में है एवं निरोध में लेने वाला प्राधिकारी ठोस साक्ष्यों से संतुष्ट है कि उसकी रिहाई की संभावना है एवं उसके पूर्ववृत्त कार्यों को देखते हुए उसे ऐसे हानिकारक कार्यों में लिप्त होने से रोकने के लिए निरोध में रखा जाना चाहिए, तो निरोध आदेश वैध रूप से जारी किया जा सकता है।

29. हमारी राय में, यदि किसी व्यक्ति ने जमानत याचिका दायर की है एवं वह लंबित है, तो उसे जमानत पर रिहा किए जाने की वास्तविक संभावना है। तार्किक रूप से, यदि कोई जमानत याचिका लंबित नहीं है, तो निरोध में लिए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा किए जाने की कोई संभावना नहीं है, एवं इसलिए निरोध आदेश अवैध होगा। हालांकि, इस नियम का एक अपवाद हो सकता है, अर्थात्, जहां किसी सह-आरोपी को, जिसका वाद समान आधार पर है,

जमानत दी गई हो। ऐसे वादों में, निरोध प्राधिकारी यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि निरोध में लिए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा किए जाने की संभावना है, भले ही उसकी कोई जमानत याचिका लंबित न हो, क्योंकि अधिकांश न्यायालय सामान्यतः इसी आधार पर जमानत देते हैं। हालांकि, ऐसे कथित समान वादों का विवरण दिया जाना चाहिए, अन्यथा प्राधिकारी के निराधार कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

30. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अल्ताफ अहमद ने आगे कहा कि हम इस वाद को लेकर अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण अपना रहे हैं, एवं हमें उन वादों में पारित निवारक निरोध आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जहां गंभीर अपराध किए गए हैं। हम इससे सहमत नहीं हैं।

31. निवारक निरोध, स्वभावतः, लोकतांत्रिक विचारों के विपरीत एवं विधि के शासन के विरुद्ध है। अमेरिका एवं इंग्लैंड में (युद्धकाल को छोड़कर) ऐसा कोई कानून मौजूद नहीं है। यद्यपि भारत के संविधान का अनुच्छेद 22(3)(ख) निवारक निरोध की अनुमति देता है, इसलिए हम इसे अवैध नहीं ठहरा सकते, परन्तु हमें निवारक निरोध की शक्ति को बहुत सीमित रखना होगा, अन्यथा हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता के उस महान अधिकार को छीन लेंगे, जो लंबे, कठिन एवं ऐतिहासिक संघर्षों के बाद प्राप्त हुआ था। अतः यह स्पष्ट है कि यदि देश का सामान्य कानून (भारतीय दंड संहिता एवं अन्य दंड संहिताएँ) किसी स्थिति से निपट सकता है, तो निवारक निरोध कानून का सहारा लेना अवैध होगा।

32. जब भी निवारक निरोध कानून के अंतर्गत किसी आदेश को चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय को उसकी वैधता का निर्णय करते समय यह प्रश्न अवश्य पूछना चाहिए: क्या देश का सामान्य कानून उस स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त था? यदि उत्तर हाँ में है, तो निरोध आदेश अवैध होगा। वर्तमान वाद में, बंदी पर लेबल बदलकर समाप्ति तिथि के बाद वाली दवाओं को बेचने का आरोप था। भारतीय दंड संहिता एवं औषधि एवं सौंदर्य प्रसाधन अधिनियम में इस

स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त प्रावधान मौजूद थे। अतः, हमारी राय में, इस कारण से भी विचाराधीन निरोध आदेश अवैध था।

33. इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि यह सत्य है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा *बीराम चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य* (1974) 4 एससीसी 573 में दिया गया निर्णय, संविधान पीठ के *हरधन साहा* वाद (उपरोक्त) के निर्णय द्वारा निरस्त कर दिया गया था (कंडिका 34 देखें)। हालांकि, कानूनी स्थिति को सही ढंग से समझने के लिए हमें इन निर्णयों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए।

34. *बीराम चंद* वाद (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने यह माना था कि अधिकारी एक ही तथ्य के आधार पर दांडिक कार्यवाही एवं निवारक निरोध आदेश दोनों का सहारा नहीं ले सकते (उक्त निर्णय के कंडिका 15 देखें)। इसी दृष्टिकोण को संविधान पीठ के *हरधन साहा* वाद (उपरोक्त) के निर्णय द्वारा उलट दिया गया था।

35. इसका यह अर्थ नहीं है कि संविधान पीठ ने यह निर्धारित किया कि सभी वादों में अधिकारी दांडिक कार्यवाही एवं निवारक निरोध आदेश दोनों का सहारा ले सकते हैं, *भले ही न्यायालय के विचार में पूर्व स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त आधार हो।*

36. जिस बिंदु पर हम जोर दे रहे हैं, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय के निर्णयों में इसकी अनदेखी की गई है।

37. इसमें कोई संदेह नहीं है कि *हरधन साहा* के वाद (उपरोक्त) में संविधान पीठ के निर्णय में यह माना गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी दांडिक अपराध के लिए दांडिक न्यायालय में विचारण चलाने के योग्य है, या वास्तव में उस पर विचारण चल रहा है, तो भी यह अधिकारियों को निवारक निरोध कानून के तहत निरोध आदेश पारित करने से नहीं रोकता है। इस अवलोकन को सही ढंग से समझने के लिए, संविधान के अनुच्छेद 21 एवं 22 में निहित

संवैधानिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में इसकी व्याख्या की जानी चाहिए (जिसकी व्याख्या हम पहले ही कर चुके हैं)। अनुच्छेद 22(3)(ख) केवल अनुच्छेद 21 का अपवाद है एवं यह स्वयं एक मौलिक अधिकार नहीं है। अनुच्छेद 21 हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों से संबंधित संपूर्ण अध्याय का केंद्रबिंदु है। स्वतंत्रता के अधिकार का अर्थ है कि किसी व्यक्ति को कारागार भेजने से पहले, सामान्यतः एक विचारण चलाया जाना चाहिए जिसमें उसे अपने अधिवक्ता के माध्यम से अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाए। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी दंडिक अपराध के लिए विचारण चलाने के योग्य है, या वास्तव में उस पर विचारण चल रहा है, लेकिन सामान्य दंडिक कानून (भारतीय दंड संहिता या अन्य दंड कानून) इस स्थिति से निपटने में सक्षम नहीं है, तो केवल तभी निवारक निरोध कानून का सहारा लिया जा सकता है।

38. अतः, हरधन साहा वाद (उपरोक्त) के अनुच्छेद 34 में की गई टिप्पणी को एक ऐसा पूर्ण कथन नहीं माना जा सकता है कि प्रत्येक वाद में, जहाँ कोई व्यक्ति किसी दंडिक न्यायालय में किसी अपराध के लिए विचारण चलाने योग्य है, या वास्तव में विचारण चला रहा है, तो निवारक निरोध कानून के तहत भी निरोध आदेश पारित किया जा सकता है।

39. यह याद रखना चाहिए कि निवारक निरोध के वादों में कोई अपराध सिद्ध नहीं होता है एवं ऐसी निरोध का औचित्य संदेह या उचित संभावना पर आधारित होता है, न कि किसी दोषसिद्धि पर, जो केवल कानूनी साक्ष्य द्वारा ही सिद्ध हो सकती है। निवारक निरोध को अक्सर 'संदेह का क्षेत्राधिकार' कहा जाता है (देखें *महाराष्ट्र राज्य बनाम भाउराव पंजाबराव गवांडे* (उपरोक्त) - कंडिका 63)। निरोध प्राधिकारी व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर निरोध का आदेश पारित करता है। चूंकि अनुच्छेद 22 का खंड (3) विशेष रूप से खंड (1) एवं (2) की प्रयोज्यता को अवैध करता है, इसलिए बंदी को अधिवक्ता का अधिकार या गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर दंडाधिकारी के समक्ष पेश होने का अधिकार नहीं है।

40. इस संभावित रूप से खतरनाक शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए निवारक निरोध कानून की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए एवं प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का सावधानीपूर्वक अनुपालन, चाहे वे कितने भी तकनीकी क्यों न हों, हमारी राय में अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण है।

41. यह माना गया है कि स्वतंत्रता का इतिहास प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का इतिहास है। (देखें: *कमलेशकुमार ईश्वरदास पटेल बनाम भारत संघ एवं अन्य* (1995) 4 एससीसी 51, कंडिका 49)। इन प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का न्यायालय द्वारा पूरी सतर्कता से निगरानी एवं प्रवर्तन किया जाना आवश्यक है एवं बंदी की कथित गतिविधियों की प्रकृति के आधार पर इनकी कठोरता को कम नहीं किया जा सकता है।

42. जैसा कि *रतन सिंह बनाम पंजाब राज्य*, (1981) एससीसी 1981 में देखा गया है:

"हो सकता है कि बंदी एक तस्कर हो, जिसका गिरोह (एवं उनकी संख्या कितनी तेजी से बढ़ रही है!) किसी सहानुभूति का पात्र न हो, क्योंकि उसकी गतिविधियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को पंगु बना दिया है। लेकिन निवारक निरोध के कानून उनके तहत निरोध में लिए गए व्यक्तियों को केवल नाममात्र की सुरक्षा प्रदान करते हैं, एवं यदि हमारे लोकतांत्रिक ढांचे में स्वतंत्रता एवं आज़ादी का कोई अर्थ होना है, तो यह आवश्यक है कि कम से कम ये सुरक्षाएँ बंदियों को नकारी न जाएँ।"

43. जैसा कि *अब्दुल लतीफ अब्दुल वहाब शेख बनाम बी.के. झा एवं एक अन्य* (1987) 2 एससीसी 22, कंडिका 5 देखें,

"...प्रक्रियात्मक आवश्यकताएं ही बंदी के लिए उपलब्ध एकमात्र सुरक्षा उपाय हैं, क्योंकि न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह बंदी प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि की जांच करे। अतः, यदि बंदी की स्वतंत्रता एवं इस संबंध में

उसे प्रदत्त संवैधानिक अधिकारों को कोई महत्व देना है, तो प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए..."

44. जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति डगलस ने *संयुक्त फासीवाद विरोधी शरणार्थी समिति बनाम मैकग्राथ*, 341 यूएस 123 पृष्ठ 179 में कहा, "कानून के शासन एवं मनमानी या सनक के शासन के बीच का अंतर प्रक्रिया में ही निहित होता है। सख्त प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का दृढ़तापूर्वक पालन ही यह सुनिश्चित करता है कि कानून के तहत समान न्याय मिलेगा।"

45. प्रक्रियात्मक अधिकार बंदी के प्रति भावनात्मक चिंताओं पर आधारित नहीं होते। प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय अपराधियों को लाड़-प्यार करने या ऐसे तकनीकी खामियों को दूर करने के लिए नहीं बनाए गए हैं जिनके माध्यम से खतरनाक व्यक्ति अपने कृत्यों के परिणामों से बच सकें। ये मूल रूप से समाज की ओर से यह आश्वासन हैं कि अधिकारी सदियों के ठोस अनुभवों से प्राप्त नियमों के अनुसार उचित व्यवहार करेंगे।

46. अनुच्छेद 21 के तहत संरक्षित व्यक्तिगत स्वतंत्रता इतनी पवित्र एवं संवैधानिक मूल्यों की श्रेणी में इतनी उच्च है कि निरोध प्राधिकारी का यह दायित्व है कि वह यह सिद्ध करे कि आक्षेपित निरोध कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पूर्णतया पालन करती है। आवश्यक सतर्कता एवं सतर्कता की कठोरता का वर्णन *थॉमस पचम डेल* के वाद (1881) 6 क्यूबीडी 376 में निम्नलिखित शब्दों में उपयुक्त रूप से किया गया है:

"फिर बंदी प्रत्यक्षीकरण का प्रश्न आता है। यह एक सामान्य नियम है, जिसका इंग्लैंड की न्यायालयों ने हमेशा पालन किया है, कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को कैद करवाता है, तो उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि वह पूरी तरह से नियमित चरणों का पालन करे, एवं यदि वह प्रक्रिया के प्रत्येक चरण का अत्यंत

नियमितता से पालन करने में विफल रहता है, तो न्यायालय कैद को जारी नहीं रहने देगी।"

47. उपरोक्त कारणों से, यह अपील स्वीकार की जाती है, आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है एवं आक्षेपित निरोध आदेश अभिखंडित किया जाता है। हालांकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि इससे कथित अभियुक्तों के विरुद्ध लंबित दांडिक वादों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

48. हम आगे निर्देश देते हैं कि इस अपील में संबंधित बंदी को तत्काल रिहा कर दिया जाए, यदि वह किसी अन्य वाद में आवश्यक न हो।

दांडिक अपील संख्या 756 वर्ष 2011; दांडिक अपील संख्या 757 वर्ष 2011; दांडिक अपील संख्या 759 वर्ष 2011; दांडिक अपील संख्या 760 वर्ष 2011; दांडिक अपील संख्या 762 वर्ष 2011; दांडिक अपील संख्या 763 वर्ष 2011; दांडिक अपील संख्या 764 वर्ष 2011

49. दांडिक अपील संख्या 755 वर्ष 2011 में पारित आदेश इन अपीलों पर भी लागू होगा।

50. तदनुसार, दांडिक अपील संख्या 755/2011 में पारित आदेश में दिए गए कारणों के आधार पर, इन अपीलों को स्वीकार किया जाता है, आक्षेपित सामान्य आदेश को अपास्त किया जाता है एवं आक्षेपित निरोध आदेशों को अभिखंडित किया जाता है। हालांकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि इससे कथित अभियुक्तों के विरुद्ध लंबित दांडिक वादों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

51. हम आगे निर्देश देते हैं कि इन अपीलों में संबंधित बंदियों को तत्काल रिहा कर दिया जाए, यदि वे किसी अन्य वाद में वांछित न हों।

एन.जे.

अपीलें स्वीकार की गईं।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।